असहमति का साहस और सहमति का विवेक

फरवरी, 2006

वर्ष : 37, अंक : 5

समयांतर

समाचार विचार और संस्कृति का मासिक

DL(E)-21/5107/06-8 RNI No.19723-70

राष्ट्र राज्य का भविष्य

लेख

सुंदर चंद ठाकुर प्रभात पटनायक कमल नयन काबरा आशीष नंदी राजीव भार्गव प्रभा खेतान रमेश दीक्षित धर्मेन्द्र कुमार महेन्द्र प्रसाद सिंह प्रकाश उपाध्याय सुरेश पंडित धनंजय कुमार राय निरंजन सहाय राम सुजान अमर

साक्षात्कार

मनोरंजन महांति *से शशिकांत झा की बातचीत*

अरुण कुमार *से धनंजय कुमार राय की बातचीत*

विशेष

हेराल्ड पिंटर होने का अर्थ

आनंद प्रकाश

लेख

पर्यावरण

- मॉन्ट्रियल बैठक की सच्चाई

–राय अवधेशकुमार श्रीवास्तव

जन्मशती

- हमारे युग का नायक?

–सुभाष गाताडे

फिल्म

- संकट में समारोह

–दीवान सिंह बजेली

कलिंगनगर गोलीकांड

- पुलिस बर्बरता और जनसंगठनों की भूमिका

–स्वतंत्र मिश्र

साहित्य

- अरुंधति राय: लेखकीय गरिमा का निर्वाह

दिल्ली मेल

चंदा: वार्षिक : 100 रु.
दो वर्ष : 175 रु.
तीन वर्ष : 260 रु.
पांच वर्ष : 425 रु.

दिल्ली

यह अंक: 25 रुपये

समयांतर

वर्ष : 37, अंक: 5, फरवरी 2006

संपादकीय

3. राष्ट्र राज्य किसके लिए जिंदा रहना चाहिए

लेख

26. राज्यों के जन्म से राष्ट्र राज्यों तक: सुंदर चंद ठाकुर
31. वैश्वीकरण के युग में राष्ट्र राज्य: प्रभात पटनायक
36. राज्य समाप्ति नहीं अपहरण: कमल नयन काबरा
40. राष्ट्र राज्य से परे एक और विकल्प: आशीष नंदी
44. आधुनिक राष्ट्र और सांस्कृतिक अधिकार: राजीव भार्गव
46. ब्रांड: नव साम्राज्यवाद का नया हथियार: प्रभा खेतान
58. अप्रासांगिक नहीं हैं राष्ट्र राज्य: रमेश दीक्षित
65. भूमंडलीकरण के दौर में राष्ट्र राज्य: धर्मेन्द्र कुमार
69. संघात्मकता का बढ़ता प्रभाव: महेन्द्र प्रसाद सिंह
78. राष्ट्र राज्य और बाजार राज्य: प्रकाश उपाध्याय
84. राष्ट्र राज्यों का अनुकूलन: सुरेश पंडित
86. दलितों के लिए कल्याणकारी राज्य: धनंजय कुमार राय
91. बेगाना है सीमांत समाज: निरंजन सहाय
93. पूंजी का नया सम्राज्य बनाम राष्ट्र राज्य: राम सुजान अमर

साक्षात्कार

43. राज्य अपने कल्याणकारी कार्यों से पीछे हट रहा है
मनोरंजन महांति से शशि कुमार झा की बातचीत
61. विकासमान देशों के लिए जरूरी है राष्ट्र
अरुण कुमार से धनंजय कुमार राय की बातचीत

नियमित स्तंभ

समाचार-संदर्भ

6. अरुंधति राय: लेखकीय गरिमा का निर्वाह
-पंकज बिष्ट
6. पुलिस बर्बरता और जनसंगठन
-स्वतंत्र मिश्र

विशेष

8. हेरल्ड पिंटर होने का अर्थ
-आनंद प्रकाश

विचार

15. मॉन्ट्रियल बैठक की सच्चाई
-राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव
18. हमारे युग का एक नायक
– सुभाष गाताडे

फिल्म

22. संकट में समारोह
– दीवान सिंह बजेली
24. विविध
– नवीन पाठक

चंदे की दरें

- एक वर्ष: रु. 100.00
- दो वर्ष रु. 175.00
- तीन वर्ष: रु. 260.00
- पांच वर्ष: रु. 425.00

संस्थाओं के लिए: एक वर्ष रु. 100।

विदेशों में: एक वर्ष 15 अमरीकी डालर।

कृपया चंदा मनिआर्डर अथवा डिमांड ड्राफ्ट द्वारा ही *समयांतर* के नाम भेजें।

इस अंक के अतिथि संपादक
रामशरण जोशी

•

संपादक: पंकज बिष्ट
फोन: 9868302298

संपादन सहायक:
रामाज्ञा राय शशिधर, गणपत तेली
व्यवस्था:
चतुर्भुज चौबे, मिलन
टाइपसेट : अवधेश कुमार
फोन: 9871403843

कार्यालय:
79-ए दिलशाद गार्डन, दिल्ली-95

समयांतर से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

e-mail: samayantar@yahoo.com

सर्वव्यापकता अत्यंत महत्वपूर्ण है ताकि वह व्यवसायिक विफलता को संभाल सके।

...सामान्यत: सुरक्षा की स्थिति किसी बाहरी संस्था से दखलंदाजी की आवश्यकता की अभिव्यक्ति करती है, जो अमूमन राज्य है। उदार भाव से कल्याणकारी राज्य का कार्य उन कमजोर व अक्षम वर्गों को सुरक्षा प्रदान करना है, जो असमान प्रतियोगिता की शक्तियों द्वारा व्यवस्था से बाहर फेंके जाने के खतरे से ग्रस्त हैं... (गुरु, 2005:39)।

राज्य द्वारा बाजार में दखल को सुविधाजनक रूप से तीन श्रेणियों–कार्यकारी, संस्थागत एवम् सामरिक में बांटा जा सकता है (भादुरी और नायर, 1996:137)। कार्यकारी दखल का ध्येय मूल्यों द्वारा गलत संकेतों की स्थिति को सुधारना है (वही)। संस्थागत दखल का ध्येय बाजार पर राज करना है। यह ऐसा बाजार के खिलाड़ियों के लिए खेल के नियम बनाकर करता है। यह ऐसी संस्थाएं बना देता है जो बाजार की कार्यशैली को देखती रहती है (वही:138)। एक बाजार–अर्थव्यवस्था का व्यवसायियों तथा व्यक्तियों दोनों के हितों की रक्षा के लिए नियंत्रक विधिक व्यवस्था की आवश्यकता है, जो केवल किसी भी कीमत पर मुनाफे से ही संबंधित न हो। ग्राहकों के हित यहां अधिक महत्वपूर्ण हैं (वही)। राज्य सामरिक–बाजार का मार्गदर्शन करता है। ऊपरलिखित दखल का दलितों पर असर कुछ ऐसे होगा–यदि मूल्य राज्य के नियंत्रण में हों, तो दलितों के पास खरीदने की क्षमता बेहतर होगी, यदि मूलभुत वस्तुओं के दाम बढ़ जाएं। दलितों को बाजार निर्णायक नीति में अधिक हिस्सा लेने का अवसर मिलेगा, क्योंकि राज्य की समानाधिकार नीति आर्थिक स्रोतों के आवंटन में दलितों की न्यूनतम हिस्सेदारी पर जोर देती है। राज्य के मार्गदर्शन में दलितों को बाजार द्वारा सामाजिक क्षेत्रों में अधिक भाग दिया जाएगा।

अंतत:, अपनी स्वाधीनता के लिए दलितों को सरकार व राज्य की मदद की आवश्यकता है। दलितों का विकास हमारी आर्थिक संपन्नता, सामाजिक सद्भाव तथा राजनैतिक स्थायित्व को बल प्रदान करेगा। यह तभी हासिल किया जा सकता है जब दलितों को हर स्तर पर सम्मिलित किया जाए और इसके लिए, वैश्वीकरण के हर युग में कल्याणकारी राज्य की उपस्थिति अत्यंत अनिवार्य है।■

इस राष्ट्र राज्य से बेगाना है सीमांत समाज

राष्ट्र की हिंदुत्ववादी अवधारणा और आदिवासी, भील

निरंजन सहाय

ऐतिहासिक विकास-क्रम कई बार पदों के अर्थ में नृशंस बदलाव ला देता है। उदाहरण के लिए 'राष्ट्र' पद को लिया जा सकता है। भारत मे, आधुनिक संदर्भों में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में 'राष्ट्र के अर्थ में जो सामूहिक चेतना, संघर्ष की तपन और औपनिवेशिक गुलामी से मुक्ति की कामना निहित थी, उसने न सिर्फ भारतीय संदर्भों में समरस और प्रगतिशील भविष्य का सपना देखा बल्कि उसने एशिया और अफ्रिका के अनेक देशों को औपनिवेशिक बेड़ियों से मुक्ति का सपना भी दिखाया। यहां यह लक्षित करना भी जरूरी है कि इस 'राष्ट्रवाद' का स्वरूप 'धर्मनिरपेक्ष' था और यह 'उदार बहुलवादी' (लिबरल प्लुरल) था। अपने अवधारणात्मक उद्देश्यों में यह एकदम स्पष्ट था, 'धर्म को राजनीति से अलग कर देना चाहिए और उसे निजी विश्वास और प्रतिबद्धता के क्षेत्र तक सीमित कर देना चाहिए। यदि ऐसी स्थिति बन गई तो भारत जैसे बहुधर्मी समाज में भी अलग-अलग धर्मों में विश्वास रखने वाले व्यक्तियों को 'राष्ट्र' को वफादारी देने में कोई कठिनाई नहीं होगी।"[1]

बीसवीं सदी के आरंभ में 'हिंदू महासभा' के गठन के बाद उन्माद की राजनीति ने, तेजी से राजनीतिक उद्देश्यों के लिए पदों के अर्थ में बदलाव की प्रक्रिया को आरंभ किया। आजादी के पहले इन ताकतों को आंशिक सफलता ही मिली, पर आजादी के बाद इनकी सक्रियता में काफी बढ़ोतरी हुई। पुरोहित वर्ग, साहूकार और लंपट राजनीतिक तत्वों ने श्रमशील बहुजन का दोहन यथास्थितिवादी उसे राजनीति के लिए किया जहां 'राष्ट्र' पद की आड़ में धर्म का इस्तेमाल करते हुए सीमांत समाज (आदिवासी,भील) के आर्थिक तंत्र को नष्ट-विनष्ट कर उनकी पहचान को न सिर्फ सुनियोजित षड्यंत्र के तहत मिटाने की प्रक्रिया आरंभ हुई। बल्कि उन्हें असभ्य, जंगली या 'वनवासी' पदावली में सीमित करने की कोशिशें भी तेज हुईं।

वस्तुत: इसके पीछे 'हिंदुत्व' और 'राष्ट्रवाद' के घालमेल की सुचिंतित चाल सक्रिय है। हिंदुत्ववादी भारत को मूलत: 'हिंदू राष्ट्र' मानते हैं। यह कोई धार्मिक दर्शन या समाज सुधार आंदोलन नहीं है। दरअसल यह एक राजनीतिक दर्शन है जो हिंदू संस्कृति की अंधभक्ति पर आधारित है। साथ ही जो यह भी मानती है कि अल्पसंख्यक जिनमें आदिवासी, भील भी शामिल हैं, उनकी सुरक्षा 'बहुसंख्यक वर्ग की सद्भावना' अर्जित करके ही हासिल हो सकती है। इस प्रकार हिंदुत्ववादी राष्ट्रवाद यह मानता है कि जो बात बहुसंख्यक अर्थात 'वर्णवादी हिंदुओं' के हित में है, वही अल्पसंख्यक वर्गों का भी हित होना चाहिए। अल्पसंख्यक वर्ग की मांग या पहचान को यह दर्शन चतुराईपूर्वक 'राष्ट्रविरोधी' का फतवा जारी कर देता है, फिर वे अल्पसंख्यकों द्वारा असहमति के हर सुर को 'हिंदुत्व पर हमला' पद से नवाजते हैं। राजस्थान के उदयपुर और गुजरात के डांग जिले के आदिवासी इलाके पर विश्लेषणपरक अध्ययन करने वाले जी.एन. देवी, निदेशक, ट्राइबल एकेडमी, तेजगढ़ का कहना है, 'हिंदुत्व के समर्थकों का सपना है कि भारत एक हिंदू राष्ट्र बने। इसलिए आदिवासी (भीलों) का जो हिंदू नहीं है, हिंदुत्व के प्रति उत्साह का कोई कारण दिखाई नहीं देता।

देवी ने 'राष्ट्रवाद' के तुमुल कोलाहल में सांप्रदायिक शक्तियों द्वारा इस्तेमाल होने वाले आदिवासियों पर एक व्यापक अध्ययन किया है, उनके द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण और तथ्य हमें 'सीमांत समाज' अर्थात् आदिवासी, भील समाज में तथाकथित 'राष्ट्रवाद' के प्रवेश और उनकी फलश्रुतियों से बावस्ता कराते हैं। सुविधा की दृष्टि से सीमांत समाज में आरोपित इस 'राष्ट्रवाद' के स्वरूप का अध्ययन इन बिंदुओं के मार्फत करें:

स्वाधीन भारत की सत्ता पर लंबे समय तक काबिज कांग्रेसी नेतृत्व को यह अच्छी तरह मालूम था कि आदिवासी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों से एकदम अनजान थे। उनका इतिहास, सांस्कृतिक परंपराएं, राज्य के प्रति रवैया और आध्यात्मिकता अन्य समाजों से एकदम अलग है। पीढ़ियों से आदिवासी वनक्षेत्र

को ही अपना क्षेत्र मानते आए। एक चौंकाने वाला तथ्य यह भी है कि अभी भी पांच भील राजा 'प्रिवी पर्स' पाते हैं। लेख के अंत में इस पर अलग से चर्चा की जाएगी। फिलहाल यह कि स्वाधीन भारत में जब आदिवासी-भीलों से जंगल अधिकार ले लिया गया, तब से उनकी हालत और भी खराब हो गई। जंगलों का राज्य और माफिया तत्वों ने मिलकर दोहन तो किया, पर उनके साथ सांस्कृतिक विरासत और आर्थिक तंत्र विकसित करने वाले मूल निवासियों की झोली लगातार खाली होती गई। उसी तरह आदिवासी क्षेत्रों में जो बड़ी-बड़ी परियोजनाएं कार्यरत हुईं, उनसे स्थनीय निवासी लाभान्वित नहीं हुए। उदाहरण के तौर पर गुजरात के मशहूर सरदार सरोवर परियोजना, राजस्थान के बांसवाड़ा जिले की माही परियोजना, उदयपुर जिले की मानसी वाकल परियोजना ली जा सकती है। राष्ट्र की या शासन की जो समझ व्यावहारिक रूप में आदिवासियों को समझ में आती है वह यही है कि राष्ट्र उन्हें परंपरागत जमीन से बेदखल कर उन शहरों के लोगों को सुविधाएं मुहैया कराता जो उनकी लकड़ियों और जंगल के खनिज इनके इलाके से ले जाते हैं। राष्ट्र प्रायोजित विकास का क्रूर पक्ष यह है कि जिस माही नदी को बांधकर बिजली पैदा की जाती है उसकी रोशनी उन आदिवासियों को नहीं मिलती जिनकी जमीन डूब क्षेत्र में आ गई। अब धीरे-धीरे विकास का यह गणित आदि निवासियों को समझ में आने लगा है। इस लेख के लिखे जाते समय तीन दिनों से उड़ीसा के कलिंगनगर के आदिवासियों ने राजमार्ग जाम कर रखा था, इसलिए कि उन्हें अपने अनुभवों ने यह समझा दिया कि राष्ट्र समश्रित जो बहुराष्ट्रीय कंपनी उनके क्षेत्र में उद्यम लगाने जा रही है उससे उनका कोई लाभ तो नहीं होगा, उल्टे वे विस्थापित जरूर हो जाएंगे। कुल मिलाकर आदिवासी जो अपने क्षेत्र को ही अपना देश (राज) मानते हैं, उन्हें आधुनिक राष्ट्र ने उजाड़ा है और उनके आंसुओं को पोंछने तक की जहमत नहीं उठाई है।

मुख्यधारा की दो राष्ट्रीय पार्टियों ने जो आदिवासियों, भीलों के साथ सलूक किया, वह गौरतलब है। कांग्रेस उन्हें समझाती रही कि वे 'पिछड़े' हैं। देवी का विश्लेषण गौरतलब है, 'आदिवासी क्षेत्रों में कांग्रेस के वर्चस्व के वर्षों में पार्टी ने आदिवासियों को पढ़ाने-लिखाने पर कोई ध्यान नहीं दिया। उनका वोट पाते रहने के लिए उन्हें गरीबी और पिछड़ेपन की हालत में रखना आवश्यक था। आदिवासी क्षेत्रों में कांग्रेस के चार दशकों के शासनकाल के दौरान पार्टी उन्हें अहसास दिलाती रही कि वे 'पिछड़े' हैं। इसके कारण आदिवासियों को अपने पिछड़ेपन का पूरा अहसास हो गया। कांग्रेस को मालूम था कि आदिवासियों को गरीबी की हालत में रखने पर उनकी राजनीतिक महत्वांकाक्षा नहीं जगेगी।' दूसरी तरफ प्रतिद्वंद्वी राजनीतिक दल भाजपा ने अपनी नीतियों के विस्तार हेतु आदिवासी भील क्षेत्र में 'वनवासी कल्याण परिषद' या 'वनवासी क्षेत्र संघ' (वसेस) का व्यापक गठन किया। यह संगठन सांस्कृतिक कार्यक्रमों और शैक्षिक विमर्शों के माध्यम से हिंदुत्व की नीतियों का विस्तार कर रहा है। गौरतलब है, यह संगठन आदिवासियों-भीलों को 'वनवासी' पद से नवाजता है। कहना न होगा कि इसके गहरे अभिप्राय हैं। आदिवासी का अर्थ है-मूल निवासी, जबकि वनवासी का अर्थ है – जंगल के लोग, दूसरे शब्दों में 'जंगली' भी। 'जंगली' शब्द की जो अर्थध्वनि है, उस पर यहां अलग से टिप्पणी करने की कोई जरूरत नहीं। दरअसल हिंदुत्ववादी यह मानते हैं कि केवल आर्य यहां के मूल निवासी हैं। अब जो आर्य नहीं हैं, वे भला यहां के मूल निवासी कैसे हो सकते हैं? यही कारण है कि संघ परिवार आदिवासी-भीलों को निहित राजनीतिक उद्देश्यों के लिए 'वनवासी' पद से नवाजता है।

वनवासी कल्याण परिषद या वनवासी सेवा संघ ईसाई मिशनरियों को सबसे बड़ा दुश्मन समझती है। मिशनरियां जो कि पारंपरिक देवताओं बाबा पिथेरो, इटेलन या खाकल देव की उपासना से रोकती है, उसका हिंदुत्व समर्थक विचारधारा ने अपने पक्ष में इस्तेमाल किया। हिंदुत्व समर्थक वनवासियों ने मिशनरियों को अपना कोपभाजन बनाया है, उदाहरण के रूप में गुजरात के डांग जिले, राजस्थान व बांसवाड़ा जिले व झारखंड, उड़ीसा में मिशनरियों पर बढ़ते हमलों को इसके मद्देनजर देखा जा सकता है। पर इन मामलों का एक रोचक और गौरतलब पहलू यह है कि हिंदुत्ववादी आदिवासियों में नफरत की भावना भरने में तो कामयाब रहे पर वे आदिवासियों की पहचान बदलने में कामयाब नहीं हुए।

कांग्रेस-भाजपा ने आदिवासी क्षेत्रों में जिस तरह अपनी पहुंच को कायम किया है, उससे जो राष्ट्र का स्वरूप उभरेगा वह कैसा होगा? प्रो. देवी को इस संदर्भ में उद्धृत करना मौजूं होगा, 'आदिवासियों में अपने कल्पित दुश्मनों के प्रति घृणा की भावना भर चुकी है। कांग्रेस द्वारा उनकी गरीबी न मिटाना और भाजपा द्वारा उनमें नफरत की भावना भरा जाना, इन दोनों बातों के सम्मिलित प्रभाव बड़े ही घातक साबित हो सकते हैं। हिंदुत्ववादी विचारधारा अंतत: सभी अल्पसंख्यकों, जिसमें आदिवासी भी शामिल हैं, को अपने आधिपत्य में लेना चाहेगी। इसके अलावा अल्पसंख्यक वर्गों से हिंदू राष्ट्र के प्रति वफादारी की मांग की जाएगी, जिसमें आर्यों को प्रधानता मिलेगी। ऐसी स्थिति में आदिवासियों और हिंदुत्व विचारधारा के समर्थक बन चुके हिंदू वनवासियों में टकराव अवश्यंभावी है।''

गुजरात दंगे के दौरान एक शिक्षित आदिवासी नवयुवक अर्जुन रथवा ने एक लोमहर्षक दृश्य देखा, गुजरात के 'लिम्डा बाजार' में दंगे के दौरान तकरीबन सौ साल पुराने नीम के पेड़ को भी जला दिया गया। वह पेड़ हरा-भरा था, उसे बिना काटे आग लगा दिया गया था। वह पेड़ दस दिनों तक धीरे-धीरे जलता रहा, अर्जुन रथवा ने लिखा, 'क्या लिम्डा का राहियों को छांव देने के अलावा कोई मजहब होता है? क्या यह एक आदिवासी की तरह नहीं था, न हिंदू और न मुसलमान? उन लोगों ने उसे क्यों नष्ट कर दिया? क्या उसकी किसी से दुश्मनी थी? आदिवासियों को भी उसी नीम के पेड़ की तरह नष्ट किया जा रहा है। आदिवासी न हिंदू हैं और न ही मुसलमान। लेकिन आदिवासियों की बुनियाद को खत्म करने की कोशिश हो रही है।'

पुर्तगालियों ने भारत के सभी समुदायों को 'कबीला' कहा, ब्रितानी हुकूमत को लार्ड डलहौजी के समय तक यह पता चल गया था कि कबीले और जाति का राज्य के प्रति रवैया अलग-अलग है। जहां जातियां राज्य को मानती थीं, वहीं कबीले राज्य की अवधारणा में यकीन नहीं करते। वस्तुत: वे अपने कुनबे को ही राज्य मानते हैं और अपने कुल की स्वायत्तता और शुद्धता बनाए रखने के लिए खून-खराबे तक में उन्हें कोई गुरेज नहीं। ब्रितानी हुकूमत ने 1871 में 'अपराधी जनजाति' और 1872 में 'जनजाति' की एक सूची तैयार की, आजादी के बाद उसी जनजातियों की सूची

को मानक माना गया और अपराधी जनजातियों को अनुसूचित जनजातियों, अनुसूचित जातियों और अन्य पिछड़ा वर्ग में बांट दिया गया।

आदिवासियों की सांस्कृतिक विरासत हिंदुओं, मुसलमानों या इसाईयों से एकदम अलग है। मसलन आदिवासी योग, संन्यास और वर्ण को नहीं जानते। उसी तरह कोई आदिवासी या भील भला क्यों हिंदू धर्म के प्रति आकर्षित होगा, जबकि उसे यह भली-भांति पता है कि जाति-व्यवस्था में उसकी हैसियत जाति-क्रम में सबसे नीचे है, यही नहीं उन्हें कई बार जाति व्यवस्था से बाहर भी देखा जाता है। अपनी इच्छा से हिंदू धर्म की जाति-व्यवस्था वह अपना ले तो अलग बात है। बहुत से आदिवासी हिंदू देवी-देवताओं की पूजा करते हैं, लेकिन सभी आदिवासी उनकी पूजा नहीं करते। जैसे प्राय: आदिवासी क्षेत्रों में शिव, राम, कृष्ण या हनुमान के मंदिर नहीं होते। उसी तरह उनके कुल देवता, क्षेत्रीय देवता जैसे-खाकल देव, भैरव, बाबा पिथेरो की उपासना इस्लाम या इसाईयत में नहीं है। ध्यान से देखें तो भारत में दो तरह के समाज है, एक जो जाति व धर्म को मानते है, दूसरे जो नहीं मानते, आदिवासी दूसरी श्रेणी में हैं। सरकारी आंकड़ों में हिंदू आदिवासी, मुसलमान आदिवासी और इसाई आदिवासी लिखने की परंपरा ने आदिवासियों की न सिर्फ सांस्कृतिक विरासत को नकारा बल्कि उनकी भ्रम भरी छवि को भी निर्मित किया है।

गुजरात और पश्चिमी राजस्थान के कुछ क्षेत्रों पर आधारित अध्ययन रिपोर्ट आदिवासियों के बारे में जो तथ्यात्मक जानकारी उपलब्ध कराती है, उससे आदिवासियों के हिंदू-मुसलमान-इसाई होने की अवधारणा पूरी तरह से खारिज हो जाती है। गुजरात के डांग और छोटा उदयपुर जिले में प्राय: मुस्लिम साहूकार हैं और वहां हिंदुत्व की उपस्थिति राजनीतिक पार्टी के रूप में है। इस तरह आदिवासी समाज में राष्ट्र-राज्य परिकल्पना के जटिल यथार्थ को समझते समय हमें धर्म और राजनीति के इस गठजोड़ को भी समझना होगा।

इस लेख के प्रकाशित होने तक (11 फरवरी से 13 फरवरी) गुजरात के डांग जिले में 'शबरी महाकुंभ' संपन्न हो चुका होगा। इसे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के वनवासी कल्याण परिषद द्वारा आयोजित किया जा रहा है। संघ का मानना है, इससे हिंदुत्व को बल मिलेगा, ईसाई मिशनरियों को धक्का पहुंचेगा और 'राष्ट्र' की अवधारणा सबल होगी। गुजरात सरकार ने आर.एस.एस. के स्वामी असीमानंद को इस आयोजन के संदर्भ में जब वहां भेजा तब वहां के लोग उत्तेजित हो गए। सुबीर गांव में आयोजित होने वाले इस महाकुंभ के प्रति पांच भील आदिवासी राजाओं ने असहमति जाहिर की है। तथाकथित मुख्यधारा की प्रिंट और विजुअल मीडिया ने फिलहाल इसकी नोटिस नहीं ली है। एक अपेक्षाकृत कम प्रसार संख्या वाले समाचार पत्र 'राष्ट्रदूत' ने हैरतअंगेज तथ्यों को उजागर किया है। समाचार पत्र के अनुसार इसाई मिशनरियों की उपस्थिति के कारण संघ को 'हिंदुत्व' या 'राष्ट्र' के लिए जो खतरा महसूस हो रहा है, वह भील राजाओं की नजर में बेमानी है। इस भील, कोकास और वर्षी आदिवासी क्षेत्र में इसाई मिशनरी एक शताब्दी से कार्यरत हैं, और यहां इसाइयों की संख्या 1919 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार 7824 है, जबकि हिंदुओं की संख्या, 1,33,828 है। भील राजाओं ने बलपूर्वक कहा है, 'उनके क्षेत्र में बिना अनुमति यह आयोजन नहीं होना चाहिए। उनके क्षेत्र में धर्म परिवर्तन से हिंदूवाद को कोई खतरा नहीं है, जिसकी वजह से हिंदू पहचान बनाए रखने के लिए किसी मेले या कुंभ की जरूरत हो।' पत्र कहता है, 'इतिहास डांग राजाओं के भील राजाओं के पक्ष में है, पर वे आशंकित हैं नए कुंभ से'। पत्र ने डांग राजाओं द्वारा पेश किए गए कुछ तर्कों का उल्लेख किया है-1) डांग के भील राजाओं को ब्रिटिश राज पराजित नहीं कर सका था, अत: उनके राज्य की 1,96000 वर्ग किलोमीटर भूमि को लीज पर लिया। स्वाधीनता के बाद, आज भी भारत सरकार इन राजाओं को 'लीज' की राशि का भुगतान करती है। 2) पूर्ववती राजाओं के प्रिवी पर्स को समाप्त किए जाने के तीन दशक से अधिक समय हो गया, तथापि दक्षिण पूर्व गुजरात के डांग जिले के पांच जनजातीय राजा आज तक 14 लाख रुपए वार्षिक ले रहे हैं, क्योंकि उनका मामला अलग है। इन राजाओं ने भारत आरोहण संधि पर हस्ताक्षर नहीं किए थे। 3) भील राजाओं का मानना है, इस कुंभ के आयोजन से उनकी अपनी भूमि पर 'सत्ता' को आघात पहुंचेगा, 1968 में भी सतपुरा में उनकी भूमि पर 'हिल स्टेशन' बनाया गया था, तब जो सात सौ परिवार बेघर हुए थे, उनका अभी तक पुनर्वास नहीं हुआ।■

पूंजी का नया साम्राज्य बनाम राष्ट्र-राज्य

रामसुजान अमर

भूमंडलीकरण यानी वित्तीय पूंजी क
साम्राज्यवाद! इसके बारे में विपुल मात्रा
साहित्य सामने आ रहा है। इसे तीन श्रेणियों
बांटा जा सकता है-भूमंडलीकरण का दला
भूमंडलीकरण का सिद्धांतत: विरोधी
भूमंडलीकरण का सिद्धांतत: विरोधी न होते
भी उसकी खामियों को ईमानदारी से प्रस्तुत
वाला साहित्य। इस तीसरे प्रकार के साहित्य
आज के माहौल में खासी अहमियत है।
ऐसा ही लेखन 2001 के नोबेल पुरस्कार वि
और विश्व बैंक के मुख्य अर्थशास्त्री रह
जोसेफ ई. स्टिगलिट्ज का है। उन्होंने
अध्ययन एवं अनुभवों को 'ग्लोबलाइजेश
इट्स डिस्कंटेंस' नाम की पुस्तक के
प्रस्तुत किया है। भूमंडलीकरण-उदारी
आर्थिक सुधार, मुक्त बाजार प्रभृति
नानाविध अभिव्यक्तियां हैं-और
खिलाड़ियों के असली मंसूबों को सम
लिए यह एक 'अंदर के आदमी' द्वार
एक प्रामाणिक दस्तावेज है, जिसे इस
'विचारधारा' से 'प्रेरित' कहकर खा
किया जा सकता! इस दृष्टि से, भूमंड
को समझने के लिए यह एक
विश्वसनीय स्रोत बनकर उभरता है।
इसके साथ 1971 में प्रकाशित रेमंड
पुस्तक 'सोवरेंटी ऐट बे' जोड़ दें तो
क्रम में भूमंडलीकरण की 'सत्यक
सामने आ खड़ी होती है। गौरतल
रेमंडवर्नन भी भूमंडलीकरण
अमरीकी प्रशासन के अंतर्राष्ट्रीय
निवेश के मामले में सलाहकार
स्टिगलिट्ज भी विश्व बैंक के मुख्य
बनने के पहले तत्कालीन अमरी
बिल क्लिंटन ही आर्थिक सलाहक
अध्यक्ष थे। इस तरह, स्टिग
भूमंडलीकरण का 'अनुभव' मुक
हम देखते हैं कि भूमंडलीकरण
बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों